|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

गीता परिवार
|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 2: सांख्ययोग

4/6 (श्लोक 33-47), शनिवार, 02 दिसंबर 2023

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/kk6cQzb0svQ

समत्व भाव का विकास

पारम्परिक पद्धति से दीप प्रज्वलन और प्रार्थना के पश्चात गुरुवन्दना करते हुए विवेचन सत्र का आरम्भ हुआ। हमने पिछले सत्र मे देखा कि भगवान अर्जुन को समझा रहे थे, अर्जुन को आत्मा के सातत्य और उसके सनातनत्त्व का बोध करा रहे थे। साथ ही भगवान कह रहे थे कि यह युद्ध ही तेरा धर्म है। धर्म वह होता है जब हम स्वभावगत कर्म को स्वीकृत कर लेते हैं, अर्थात जब स्वभावगत कर्म की स्वीकार्यता होती है तो वह हमारा धर्म बन जाता है। इसके साथ ही भगवान अर्जुन को यह भी बताते हैं कि युद्ध के दुष्परिणाम क्या होंगे।

2.33, 2.34, 2.35

अथ चेत्त्वमिमं(न्) धर्म्यं(म्), सङ्ग्रामं(न्) न करिष्यसि।
ततः(स्) स्वधर्मं(ङ्) कीर्तिं(ञ्) च, हित्वा पापमवाप्स्यसि॥2.33॥
अकीर्तिं(ञ्) चापि भूतानि, कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्तिः(र्), मरणादतिरिच्यते॥2.34॥
भयाद्रणादुपरतं(म्), मंस्यन्ते त्वां(म्) महारथाः।
येषां(ञ्) च त्वं(म्) बहुमतो, भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥2.35॥

अब अगर तू यह धर्ममय युद्ध नहीं करेगा, तो अपने धर्म और कीर्ति का त्याग करके पाप को प्राप्त होगा।
और सब प्राणी भी तेरी सदा रहने वाली अपकीर्ति का कथन अर्थात निंदा करेंगे। (वह) अपकीर्ति सम्मानित मनुष्य के लिये मृत्यु से भी बढ़कर दुःखदायी होती है।
तथा महारथी लोग तुझे भय के कारण युद्ध से हटा हुआ मानेंगे। जिनकी (धारणा में) तू बहुमान्य हो चुका है, (उनकी दृष्टि में) (तू) लघुता को प्राप्त हो जायगा।

विवेचन: भगवान कहते हैं, अपने धर्म से विमुख होकर उससे मुँह मोड़ना दुनिया का सबसे बडा पाप कर्म है। इस पाप कर्म से प्राप्त अपकीर्ति को सहना अत्यन्त दुष्कर होता है। एक कायरता पूर्ण कर्म का परिणाम अत्यन्त दुःखद और पीड़ादायक होता है, एक गलत कर्म का दुष्परिणाम युद्ध की यातना को सहन करने से भी अधिक कष्टदायक होता है।

भगवान अर्जुन को समझते हैं कि, युद्ध भूमि से कायर की तरह भाग कर वह सदैव सम्पूर्ण विश्व भर में एक योद्धा की भाँति नहीं वरन भागे हुए कर सैनिक के रूप में स्मरण किए जाएँगे और यह अपकीर्ति मृत्यु से भी अधिक यातना देने वाली होगी। भगवान कहते हैं कि, हे अर्जुन! तुम्हारा एक निकृष्ट कर्म सम्पूर्ण जगत में तुम्हें छोटा बना देगा, भय के कारण युद्ध भूमि से भागना पहले तो सम्भव ही नहीं है, परन्तु यदि तुम युद्ध भूमि छोड़कर भागने में सक्षम भी हो गए तब भी यह गलती तुम्हें आजीवन प्रताड़ित करती रहेगी। अतः हे परन्तप अर्जुन, भविष्य को सोचकर वर्तमान का निर्णय लेना ही सर्वश्रेष्ठ है। क्षत्रिय के रूप में जो तुम्हारा नीतिगत कर्त्तव्य है, उसका पालन करना ही तुम्हारे लिए सर्वोत्तम है।

2.36

अवाच्यवादांश्च बहून्, वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं(न्), ततो दुःखतरं(न्) नु किम्॥2.36॥

तेरे शत्रु लोग तेरी सामर्थ्य की निन्दा करते हुए बहुत से न कहने योग्य वचन भी कहेंगे। उससे बढ़कर और दुःख की बात क्या होगी?

विवेचन : भगवान अर्जुन से कहते हैं, कि यदि तुम युद्ध भूमि से भाग गए तो तुम्हारे शत्रु भी तुम्हारे सामर्थ्य की निन्दा करेंगे, तुम्हारे बारे में अर्वाच्य वाद हो जाएगा। तुम्हारा शत्रु और तुम्हारा अहित चाहने वाले लोग सभी तुम्हारे सामर्थ्य की निन्दा करेंगे और इससे भयङ्कर दु:ख दूसरा कोई नहीं हो सकता।

अर्जुन युद्ध भूमि से भागने के लिए तत्पर थे, आत्महत्या करने के लिए उद्यत थे, भिक्षा माँग कर रहने के लिए भी तैयार थे। वे तो धन और राज पाट का त्याग कर भागने की तैयारी में थे। भगवान ने कहा कि ऐसी स्थिति में तुम भागकर कहाँ जाओगे, कहीं भी जाओ तुम बच नहीं पाओगे।

सभी राजा और उनके भाट तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हारा अनुकरण करने का प्रयास करते हैं, तुम्हारे जैसी प्रत्यञ्चा चढ़ाने की कामना रखते हैं। तुम्हारे पौरुष को देखने मात्र से वे काँपने लगते हैं, भय के कारण जीने के प्रति उनके मन में विरक्ति आने लगती है। जिस तरह शेर की दहाड़ को सुनकर हाथी काँपने लगते हैं, वैसे ही तुम्हारे धनुष्य की टङ्कार से कौरव सेना भयभीत हो जाती है। जैसे पर्वत वज्र से और सर्प गरुड़ से डरता है ठीक उसी तरह तुम्हारा प्रभाव है। तुम्हारी यह कीर्ति युद्ध भूमि से भागने के कारण अपकीर्ति में परिवर्तित हो जाएगी और यह लोग तुम्हें इस तरह भागने भी नहीं देंगे। तुम यदि भाग भी जाते हो तो तुम्हें जीवन भर अपकीर्ति के कारण तिल-तिल मरना पड़ेगा, मृत्यु से भी भयङ्कर यातना सहन करना पड़ेगी, इसलिए भागने के इन विचारों को गलत ही समझ लो। युद्ध में मृत्यु आने पर, शहीद होने पर तो कीर्ति मिलती है, लेकिन भागने से तो नरक यातना ही मिलेगी। युद्ध में यदि तुम मारे भी जाओगे तब भी अमर बनोगे क्योंकि, पराक्रमी व्यक्ति हारने पर भी अमर होता है।

2.37

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं(ञ्), जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः॥2.37॥

अगर (युद्ध में तू) मारा जायगा (तो) (तुझे) स्वर्ग की प्राप्ति होगी (और) अगर (युद्ध में तू) जीत जायगा (तो) पृथ्वी का राज्य भोगेगा। अतः हे कुन्तीनन्दन! (तू) युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा।

विवेचन : भगवान अर्जुन से कहते हैं, कि युद्ध में मारे जाने पर स्वर्ग की प्राप्ति होगी या जीतने पर इस पृथ्वी पर राज करोगे इसलिए अब उठ जाओ, युद्ध के प्रति कृतनिश्चयी होकर उठो। दोलायमान मन हमेशा कमजोर होता है। दोलायमान स्थिति में तो हार पक्की है, सङ्कल्प की शक्ति ही मनुष्य को जिताती है, वही उसे विजय दिलाती है।

जापान के एक राजा की कहानी है, उस राजा का नाम था नेकिनाबू। नेकिनाबू राजा पर एक बार आक्रमण हुआ, युद्ध के समय पहले ही दिन इनका सेनापति मर गया। पूरी सेना युद्ध स्थल से भाग गई और राज्य में वापस लौट आई। अब उस राजा के पास

कोई भी कर्तृत्त्व सम्पन्न सेनापति नहीं था। राजा विमनस्क सा हो गया, चिन्तित होकर वह इधर-उधर घूम रहा था तभी एक बौद्ध भिक्षु वहाँ पहुँचा, राजा को चिन्तित देखकर उसने चिन्ता का कारण पूछा। राजा बहुत परेशान था इसलिए बोला - मुझे अकेला छोड़ दो। संन्यासी ने कहा, मैं अपने चिन्ताग्रस्त राजा को अकेला नहीं छोड़ सकता, आप अपनी चिन्ता मुझे बताओ मैं शायद कोई हल ढूँढ लूँगा। राजा सचमुच बहुत चिन्तित था, भय से ग्रस्त था, हार के कारण दु:खी था, बोला - आज मैं राजा हूँ, परन्तु कल शायद बन्दी बन जाऊँगा, मेरे पास तो अब कोई सेनापति भी नहीं है। तब संन्यासी ने कहा-मैं आपका सेनापति बनूँगा। राजा ने आश्चर्य से कहा - तुम एक संन्यासी, आज तक तुमने घुड़सवारी भी नहीं की होगी। संन्यासी बोला- मैंने घुड़सवारी तो की है, लेकिन हाँ! तलवार चलाना नहीं सीखा, लेकिन राजन, **युद्ध तलवार से नहीं मन से जीते जाते हैं।** वैसे भी आप तो युद्ध में हार ही रहे हैं, मुझे एक बार प्रयत्न करने दीजिए, शायद कुछ बात बन जाए।

राजा ने सोचा ठीक है, तब वह तेज:पुञ्ज संन्यासी राजा का सेनापति बनाकर घोड़े पर बैठा और सैनिकों के बीच पहुँचा। सैनिकों ने आशङ्कित मन से सोचा, क्या इसके नेतृत्व में हम जीतेंगे भी। डरी हुई सेना में इसी तरह की चर्चा होने लगी, लेकिन सेनापति के पीछे तो जाना ही था। जाते-जाते सेनापति एक मन्दिर के सामने पहुँचा और उसने कहा-चलो भगवान से पूछेंगे कि हम जीतेंगे या नहीं। भगवान हाँ कहेंगे तो हम युद्ध के लिए आगे जाएँगे और ना कहेंगे तो हम वापस लौट जाएँगे। मैं इस सिक्के को उछालूँगा यदि छापा आएगा तो हम जीतेंगे और काँटा आएगा तो हारेंगे।

सेनापति ने सिक्के को उछाला, देखा छापा आया था। पूरी सेना जोश में आकर घोषणा देने लगी। तभी सेनापति ने कहा मैं और दो बार सिक्का उछालूँगा, क्या आता है देखिए। फिर सिक्का उछाला फिर छापा आया, अब लोग खुशी से झण्डा उछालने लगे, गीत गाने लगे। तीसरी बार फिर छापा आया तो यह देखकर पूरी सेना में उमङ्ग का वातावरण छा गया, ढोल-ताशे बजने लगे और पूरी सेना उत्साह के साथ रणभूमि की तरफ दौड़ी।

इस सेना का जोश और उमङ्ग देखकर शत्रु सेना भयभीत हुई, युद्ध हुआ शत्रु सेना पराजित हुई और आनन्द उत्सव मनाते हुए यह विजयी सेना राजा के पास पहुँची। राजा तक जीत का समाचार पहले ही पहुँच गया था, हाथी पर बैठकर राजा अपनी सेना से मिलने आए, सामने सेनापति को देखकर राजा हाथी से नीचे उतरे, सेनापति भी घोड़े से नीचे उतरकर राजा से मिला, राजा बोला-ऐसा क्या चमत्कार कर दिया, तब सेनापति बोला यह चमत्कार सङ्कल्प शक्ति ने किया है, उसी ने हमें जिताया है।

सेनापति ने राजा को मन्दिर वाली घटना सुनाई और फिर वह सिक्का दिखाया, जिस पर दोनों तरफ छापा ही था सेनापति बोला मैं तीन बार नहीं दस बार भी यदि यह सिक्का उछालता तब भी छापा ही आता, परन्तु उसी के कारण पूरी सेना का मनोबल बढ़ गया और विजय की आकांक्षा बढ़ गई। महाराज मन का सामर्थ्य अद्‌भुत होता है।

इसीलिए हम देखते हैं कि आजकल जब ओलम्पिक हेतु खिलाड़ी जाते हैं तो उनके साथ भी समुपदेशक जाते हैं, कृत् निश्चय की भावना जागृत करने के लिए। यहाँ पर तो साक्षात भगवान ही सर्वश्रेष्ठ समुपदेशक के रूप में अर्जुन के साथ थे।

2.38

सुखदुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवं(म्) पापमवाप्स्यसि॥2.38॥

जय-पराजय, लाभ-हानि (और) सुख-दुःख को समान करके फिर युद्ध में लग जा। इस प्रकार (युद्ध करने से) (तू) पाप को प्राप्त नहीं होगा।

विवेचन : भगवान कहते हैं सुख और दु:ख तो बाहर की भावना है, जब तक हम उन्हें प्रवेश नहीं देते वह हमारे अन्दर नहीं आ सकते। सुख और दु:ख को समान समझना सीखो। सुख-दु:ख आने पर शुरू में तो हम विचलित हो जाते हैं, परन्तु धीरे-धीरे सम्भलने लगते हैं। घर में किसी की मृत्यु हो जाए तो पहले कुछ दिन बहुत विचलित करने वाले होते हैं, दो हफ्ते होने के बाद धीरे-धीरे नित्य कार्यों में हमारा मन लगने लगता है, महीने भर बाद हम और सम्भल जाते हैं और साल भर बाद तो मृत व्यक्ति को बस याद करते हैं। दु:ख धीरे-धीरे कम होता है और ऐसा ही सुख के साथ भी होता है। व्यापार में कभी-कभी बहुत लाभ

होता है, बहुत पैसा आता है, लेकिन चला भी जाता है। यह लाभ-हानि जब हमारे अन्दर जाए तब हम हँसते या रोते हैं, पर हम इस बात को जरूर समझें कि आज लाभ है तो कल हानि होगी, आज जय है तो कल पराजय होगी क्योंकि यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वर्ल्ड कप क्रिकेट में निरन्तर जीतने वाली हमारी टीम अन्तिम मैच हार गई, तब प्रधानमन्त्री जी ने सभी का हौसला बढ़ाया कि हार-जीत तो होती रहती है, यह समझाया।

भगवान भी निरन्तर अर्जुन का हौसला बढ़ा रहे हैं। भगवान कह रहे हैं कि रणभूमि पर खड़े लोगों का समय तो आ गया है, अर्जुन तुम तो केवल निमित्त भर हो, वे तो वैसे ही मृत्यु को प्राप्त होने वाले हैं। तुम किस हानि की बात कर रहे हो।

विवेचक ने अपना एक अनुभव यहाँ बताया कि कैसे एक बार वे एक व्यापारी मित्र के घर गये थे। नीचे उसकी दुकान थी और ऊपर उसका घर था। उससे बात हो रही थी लेकिन वह बार-बार एक ही बात दोहरा रहा था मेरा पाँच लाख का घाटा हो गया। थोड़ी देर बाद ऊपर से पत्नी की आवाज आई कि खाना तैयार है, हम दोनों ऊपर गए। भाभी जी बहुत हँसमुख थीं, खुशी-खुशी खाना परोस रही थीं, उनसे पूछने पर कि, यह पाँच लाख का घाटा क्या है, जिसकी बात यह मित्र बार बार कर रहा है? तब भाभी जी ने हँसते हुए कहा- इन्हें दस लाख के मुनाफे की आकांक्षा थी लेकिन दस लाख की जगह केवल पाँच लाख ही मिले इसलिए ये पाँच लाख के घाटे की बात कर रहे हैं। मुनाफे में उन्हें घाटा ही दिख रहा था। वस्तुत: लाभ-हानि तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । इन दोनों को समान ही समझना होगा।

इसीलिए भगवान अर्जुन से कहते हैं, तुम्हें लड़ना होगा। इसमें कोई पाप नहीं है। इसी बात को समझाने के लिए आगे कर्मयोग की बात कही गई है।

2.39

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये, बुद्धिर्योगे त्विमां(म्) शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ, कर्मबन्धं(म्) प्रहास्यसि॥2.39॥

हे पार्थ! यह समबुद्धि तेरे लिए (पहले) सांख्ययोग में कही गयी और (अब तू) इसको कर्मयोग के विषय में सुन; जिस समबुद्धि से युक्त हुआ (तू) कर्मबन्धन का त्याग कर देगा।

विवेचन : सम बुद्धि का विश्लेषण साङ्ख्ययोग में किया गया है। कपिल मुनि ने साङ्ख्ययोग में कहा है कि सब कुछ एक है। पुरुष और प्रकृति एक ही है। पञ्चमहाभूतों से बने इस शरीर में मन, बुद्धि और अहङ्कार चलायमान हैं। एक ही बात से सारा जीवन चल रहा है, अब इसी साङ्ख्य योग के सन्दर्भ में कर्मयोग को समझना होगा। जैसे वज्र कवच धारण करने पर शर और बाण शरीर पर काम नहीं करते, शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचती वैसे ही कर्मफल का त्याग करने से कर्मदोष नहीं लगता, कर्म के साथ योग के जुड़ जाने पर हानि और लाभ में समत्त्व आ जाता है।

कर्म और कर्मयोग में अन्तर बताते हुए भगवान कहते हैं -

*** कर्म व्यक्तिगत होता है, जबकि कर्मयोग समष्टिगत है**
*** कर्म रोष है, जबकि कर्मयोग जोश है**
*** कर्म व्यस्त रखता है और कर्मयोग मस्त रखना है**
*** कर्म स्पर्धा और तनाव अर्थात टेंशन देने वाला है, जबकि कर्मयोग सजगता अर्थात अटेंशन (ध्यान) चाहता है**
*** कर्म रुलाता है, कर्मयोग सभी को मुस्कान देता है**
*** कर्म से बुद्धि और कर्मयोग से सम्यक बुद्धि आती है।**

इस बात को समझना होगा कि कर्मयोगी को सम्मान मिलता है। समाज में कई प्रकार के लोग कई प्रकार की सेवाएँ देते हैं, वे कर्मयोगी ही कहलाते हैं। धनवान तो कितने ही हैं लेकिन सभी का नाम उस सम्मान के साथ नहीं लिया जाता जो सम्मान रतन टाटा जी को मिला है। अतिरिक्त धन होने पर समाज सेवा में लगा देना यह भी कर्मयोग बन जाता है ।

हम गीता सीख रहे हैं, किसी न किसी रूप में सेवा देना यह कर्मयोगी बनने का एक अवसर ही है। बिना किसी अपेक्षा के सतत् कार्यरत रहना कर्मयोग है। हम यह न सोचें कि हमें क्या मिला वरन यह सोचें कि हमने क्या दिया। कर्मयोग से समृद्धि आती है।

भगवान कहते हैं, अर्जुन कर्मयोग का यह छोटा सा धर्म तुम्हें महाभय से बचाएगा।

2.40

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्॥2.40॥

मनुष्यलोक में इस समबुद्धि रूप धर्म के आरम्भ का नाश नहीं होता (तथा इसके अनुष्ठान का) उलटा फल (भी) नहीं होता (और इसका) थोड़ा सा भी (अनुष्ठान) (जन्म-मरण रूप) महान भय से रक्षा कर लेता है।

विवेचन : जगदगुरु शङ्कराचार्य जी ने कहा है- किञ्चित गीता के अभ्यास से भी सफलता मिलती है और मृत्यु के भय से रक्षा भी होती है।

एक आदमी जीवन भर पाप का काम ही करता रहा, लेकिन उसके बेटे का नाम नारायण था। दिन में दस बीस बार वह नारायण को पुकारता था। मृत्यु समय आने पर भी उसके मुख से निकला-अरे नारायण !! अन्तिम समय में मुख से निकले इस शब्द के कारण ही उसे स्वर्गलोक प्राप्त हुआ।

एक और घटना है, एक सेठ जी थे। वह अपने गुरु जी के पास गए और पूछा मुझे भगवान के पास पहुँचने का कोई आसान सा मार्ग बता दीजिए। गुरुजी ने कहा-प्रतिदिन माला जप लो, सेठ जी बोले नहीं! मुझसे नहीं होगा। प्रातः गङ्गा में स्नान कर लो, नहीं! बहुत ठण्ड होगी। कुछ आसान सी बात बताइए, इससे तो ठण्ड में परेशानी हो जाएगी। रोज मन्दिर में जाओ, नहीं! सुबह-सुबह इतनी जल्दी तो नहीं जा पाऊँगा। गुरु जी ने बोला ठीक है एक और आसान बात बताता हूँ, जब तक किसी तिलकधारी आदमी को न देख लो तब तक तुम भोजन न करना। सेठ जी को यह नियम अच्छा लगा तो इसे स्वीकार कर लिया।

एक दिन सुबह से उन्हें कोई तिलकधारी नहीं दिखा, इधर-उधर घूम कर खोजते रहे, भूख तो लग रही थी लेकिन नियम जो ले रखा था। अचानक उन्हें एक तिलकधारी व्यक्ति दिखाई दिया, लेकिन वह चोर था। सज्जन का रूप धारण किए हुए वह असल में चोर था। उसे देखकर सेठ जी बोले, मिल गया-मिल गया, यह सुनकर चोर भयभीत हो गया। यह व्यक्ति मिल गया-मिल गया कह रहा है, तो अब मैं पकड़ा जाऊँगा, यह सोचते हुए भाग गया। वह चोर सेठ जी के यहाँ चोरी करने आया था, लेकिन इस तरह शोर मचाए जाने के कारण वहाँ से भाग गया और सेठजी के यहाँ चोरी होते-होते बच गई।

गीता हमें बहुत गहरा अर्थ समझाती है, उसे जीवन में उतारने से, अभ्यास में लाने से ही समत्त्व की साधना हो सकती है। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन सभी बातों को गीता विस्तार से समझाती है।

2.41

व्यवसायात्मिका बुद्धिः(र्), एकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च, बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥2.41॥

हे कुरुनन्दन! इस (समबुद्धि की प्राप्ति) के विषय में निश्चयवाली बुद्धि एक ही (होती है)। जिनका एक निश्चय नहीं है, ऐसे मनुष्यों की बुद्धियाँ अनन्त और बहुशाखाओं वाली ही (होती हैं)।

विवेचन : यहाँ व्यवसायात्मिका शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। व्यवसायी का अर्थ होता है सङ्कल्प लिया हुआ, दृढ निश्चयी और निश्चयात्मक बुद्धि रखने वाला, सम बुद्धि के लिए जिसका निश्चय हो जाए ऐसा। इसका विरुद्ध होगा चञ्चल अर्थात दोलायमान ! कुछ लोगों के मन की अवस्था सदैव दोलायमान होती है, इस सन्दर्भ में एक कहानी है।

एक पागल आदमी था, एक बार उसके सिर में बहुत दर्द हुआ तो उसने पत्नी से पूछा क्या करूँ, पत्नी बोली डॉक्टर के पास जाओ, इसके दिमाग में आशङ्काओं की झड़ी लग गई -

डॉक्टर के पास, तो गाँव वाले के पास या शहर वाले के पास, कहाँ जाऊँ? पत्नी ने कहा शहर जाओ, वह डॉक्टर के पास पहुँचा, डॉक्टर ने उसकी जाँच पड़ताल की और दो गोलियाँ भोजन के समय खाने की सूचना दी।

इनका सम्वाद कुछ इस तरह आगे बढ़ा-

गोलियाँ कब खानी हैं?
एक गोली खाना खाने से पहले और दूसरी बाद में।
कैसे खाऊँ? चबाकर या चूसकर?
निगल कर खाओ
पानी के साथ या दूध के साथ?
दूध के साथ
दूध कटोरी भरकर या गिलास भरकर ?
कटोरी भरकर
दूध गर्म या ठण्डा ?
गुनगुना
गाय का दूध या भैंस का दूध ?
(परेशान होकर डाक्टर बोले)
नहीं, नहीं, बकरी का पी लेना
कैसे पीना होगा, खडे-खड़े या बैठकर ?
(डॉक्टर बहुत ही परेशान होकर बोले)
कैसे भी खाओ लेकिन अब यहाँ से जाओ
एक बात और, अपने हाथ से दूध पीना होगा या पत्नी के हाथ से ?
भैया, कह दिया न जैसे पीना है वैसे पियो, अब बस मेरी फीस दे दो
कितनी फीस ?
सौ रुपए
बँधे या खुल्ले ?
(डॉक्टर ने तब उसे ही पचास-पचास रुपए के दो नोट थमा दिए और कहा)
भैया अब तू चला जा।

वह बाहर आ गया, दूसरा रोगी अन्दर आया, उसकी जाँच पड़ताल होने के बाद जब वह बाहर गया तो यह फिर से अन्दर घुस गया और पूछने लगा, इनमें से कौन सा नोट दवाई के लिए और कौन सा नोट रिक्शे वाले के लिए है ?

यह है सदैव दोलायमान स्थिति का उत्तम उदाहरण।

2.42

यामिमां(म्) पुष्पितां(वँ) वाचं(म्), प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः(फ्) पार्थ, नान्यदस्तीति वादिनः॥2.42॥

हे पृथानन्दन ! जो कामनाओं में तन्मय हो रहे हैं, स्वर्ग को ही श्रेष्ठ मानने वाले हैं, वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों में प्रीति रखने वाले हैं, (भोगों के सिवाय) और कुछ है ही नहीं - ऐसा कहने वाले हैं, (वे) अविवेकी मनुष्य इस प्रकार की जिस पुष्पित (दिखाऊ शोभायुक्त) वाणी को कहा करते हैं, (जो कि) जन्मरूपी कर्मफल को देने वाली है (तथा) भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये

बहुत सी क्रियाओं का वर्णन करने वाली है। (2.42-2.43)

विवेचन : भगवान कहते हैं, निश्चयात्मक बुद्धि होने से ही समत्त्व हो सकता है। हमेशा निष्काम कर्म करो, कर्त्तव्य पर डटे रहो, परन्तु अन्य चीजों की चिन्ता न करो। इस बात को समझ लो कि केवल स्वर्ग प्राप्त करना ही श्रेष्ठ नहीं है, तम, रज और सत्त्व इन गुणों से परे जाना, गुणातीत होना यह भी महत्त्वपूर्ण है, इसी तरह ऊपर की ओर चढ़ना होगा, उन्नत होना होगा।

2.43

कामात्मानः(स्) स्वर्गपरा, जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां(म्), भोगैश्वर्यगतिं(म्) प्रति॥2.43॥

विवेचन : स्वर्ग को ही श्रेष्ठ मानने वाले पृथानन्दन अर्जुन जरा सोचो, इन आततायी लोगों को मृत्यु दण्ड देना भी एक क्षत्रिय होने के नाते तुम्हारा धर्म है, तुम केवल पत्नी के अपमान का बदला चुकाने नहीं आए हो, तुम्हारा उद्देश्य इससे भी बड़ा होना चाहिए और अब तुम्हें निश्चयात्मक बुद्धि प्राप्त करनी होगी।

2.44

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां(न्), तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः(स्), समाधौ न विधीयते॥2.44॥

उस पुष्पित वाणी से जिसका अन्तःकरण हर लिया गया है अर्थात् भोगों की तरफ खिंच गया है (और जो) भोग तथा ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त हैं, (उन मनुष्यों की) परमात्मा में निश्चय वाली बुद्धि नहीं होती।

विवेचन : अर्जुन ने अब तक पहले अध्याय और दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक तक बहुत तरह की बातें की हैं - यह सभी मेरे अपने हैं, वे मर जायेंगे, पूरा वंश खत्म हो जाएगा, वंश में मन्त्राग्नि देने के लिए भी कोई नहीं बचेगा। ऐसे अनेक प्रवाद अर्जुन ने किए हैं, यहाँ भगवान अर्जुन से कहते हैं, यह सब बातें सुनने में तो अच्छी लग रही थी लेकिन अब तुम्हें कर्त्तव्य पूर्ति के लिए लड़ाई लढ़नी है इसलिए इन सब बातों को समत्त्व के भाव से देखना होगा और निश्चयात्मक बुद्धि रखनी होगी।

एक घटना है, एक बार दसवीं कक्षा के छात्र विवेचक के पास आए। परीक्षा का रिजल्ट आने के पश्चात वे सभी कुछ उदास थे। विवेचक ने पूछा, कम अङ्क आने की वजह से उदास हो क्या, कितने अङ्क आए हैं चालीस प्रतिशत? बोले नहीं, नहीं उससे अच्छे हैं। विवेचक ने कहा, पचास प्रतिशत? नहीं थोड़े और... उन्हें अठहत्तर प्रतिशत अङ्क मिले थे, परन्तु उनकी अपेक्षा थी नब्बे प्रतिशत अङ्कों की, इसलिए वह उदास थे। विवेचक ने पूछा 90% अङ्क प्राप्त करने के लिए क्या तुमने पूरी मेहनत की थी? यदि नहीं की थी तो अब यह समय है, जाग जाओ, पूरी ताकत लगाकर पूरे निश्चय के साथ मेहनत करो।

निश्चयात्मक बुद्धि निराशा को दूर करके मन को सङ्कल्प से भर देती है, इसलिए परिणाम के बारे में न सोचते हुए निष्काम बुद्धि से काम करना होगा। नकारात्मक बातें करते हुए केवल भोग के बारे में अर्जुन सोच रहे थे, उसमें से उन्हें बाहर निकाल कर कर्त्तव्य मार्ग पर लाना यही भगवान का काम था।

2.45

त्रैगुण्यविषया वेदा, निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो, निर्योगक्षेम आत्मवान्॥2.45॥

वेद तीनों गुणों के कार्य का ही वर्णन करने वाले हैं; हे अर्जुन! (तू) तीनों गुणों से रहित हो जा, राग द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित (हो जा), (निरन्तर) नित्य वस्तु परमात्मा में स्थित (हो जा), योगक्षेम की चाहना भी मत रख (और) परमात्मपरायण (हो जा)।

विवेचन : भोग और सांसारिक बातों से ऊपर उठने के लिए वे अर्जुन से कहते हैं कि तुम्हें गुणातीत तो बनना ही होगा। सत्त्वगुण के कारण अहङ्कार आता है, रज गुण के कारण महत्वाकाङ्क्षा बढ़ती है जबकि तम के कारण आलस्य उत्पन्न होता है। अर्जुन तुम्हें तो इन तीनों से ऊपर उठना पड़ेगा। तुम पूर्णतः निर्द्वन्द्व हो जाओ, मन की दोलायमान स्थिति से पूरी तरह ऊपर उठ जाओ, मन में समत्त्व के भाव को बढ़ा दो। यहाँ तक कि योग क्षेम की भी चाहत न रखते हुए, अपने आप को भगवान को सौंप दो और केवल कर्म ही करते जाओ।

2.46

यावानर्थ उदपाने, सर्वतः(स्) सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु, ब्राह्मणस्य विजानतः॥2.46॥

सब तरफ से परिपूर्ण महान जलाशय के (प्राप्त होने पर) छोटे गड्ढों में भरे जल में (मनुष्य का) जितना प्रयोजन (रहता है) अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता, (वेदों और शास्त्रों को) तत्त्व से जानने वाले ब्रह्मज्ञानी का सम्पूर्ण वेदों में उतना (ही प्रयोजन रहता है) अर्थात् कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता।

विवेचन : समत्त्व जिसने समझ लिया, सुख - दु:ख में समान रहना जिसने जान लिया, उस मार्ग पर जो आगे बढ़ गया, उसे अन्य बातों से क्या लेना-देना। समन्दर की तरफ जाने वाली सभी नदियाँ और प्रवाह एक बार समन्दर में मिल जाने पर अब उनसे क्या लेना-देना। वे जब समन्दर से मिल गए तो अब उनका पानी और समन्दर का पानी एक हो गया, उसमे एक समत्त्व आ गया। यही सम बुद्धि वेदों का सार है, उसे समझ कर और केवल कर्म करते हुए ही आगे बढ़ो।

2.47

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूः(र्), मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥2.47॥

कर्तव्य-कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, फलों में कभी नहीं। (अतः तू) कर्मफल का हेतु (भी) मत बन (और) तेरी कर्म न करने में (भी) आसक्ति न हो।

विवेचन : अद्‌भुत बात कही है भगवान ने इस श्लोक में। हम केवल परिणाम के लिए ही कार्य न करें, परिणाम तो आने ही वाला है। जब आम के बीज बोए हैं तो उस पर बबूल के पुष्प तो आएँगे नहीं, आएँगे तो आम ही। लेकिन हमारी आसक्ति उस आम में न हो, हम यदि इसी तरह से आकाङ्क्षाओं का बोझ ढोते रहेंगे तो समत्त्व प्राप्त करने के बाद भी कभी ऊँचे नहीं उठ सकेंगे।

एक कहानी है- अकबर बीरबल की कहानी।

एक बार अकबर और बीरबल किसी यात्रा पर निकले। भयङ्कर आँधी-तूफान आया। दोनों के घोड़े एक पेड़ के नीचे रुक गए। सामने एक नाला बह रहा था। बहुत बारिश के कारण नाले का जलस्तर बढ़ गया था और वे दोनों वहाँ खड़े हुए बारिश रुकने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तभी दूसरी ओर से एक व्यक्ति सिर पर लकड़ियों का गट्ठर लिए हुए आया और दौड़ता हुआ एक ही छलाँग में वह नाला पार कर गया। अकबर को यह अद्‌भुत कौशल्य देखकर बहुत अचम्भा हुआ। उसने उस व्यक्ति से प्रश्न किया कि यह चमत्कार उसने कैसे किया? उसने कहा कि जी इसमें चमत्कार कैसा, यह कार्य तो मैं रोज करता हूँ। अकबर ने कहा कि यदि तुम एक बार पुन: इस पार से उस पार जाकर दिखाओ, तो मैं तुम्हें एक स्वर्ण मुद्रा उपहार में दूँगा। यह सुनकर बीरबल हँस पड़े। अकबर ने पूछा तुम हँसे क्यों? बीरबल ने उत्तर दिया कि यह अब यह नाला पार नहीं कर पाएगा। व्यक्ति लकड़ियों का गट्ठर सिर पर रखकर दौड़ता हुआ आया और जहाँ से उसे उछलना था, वहीं पर वह फिसल कर गिर गया। बीरबल और जोर से हँस पड़े। अकबर ने पूछा कि तुमने भविष्यवाणी कैसे कर दी? बीरबल ने कहा कि जब यह दूसरी ओर से यहाँ आया था तब इसके सिर पर केवल लकड़ी का एक गट्ठर था, परन्तु अब इसके सिर पर गट्ठर के अतिरिक्त एक स्वर्ण मुद्रा का भार बढ़ गया था। इसके मन में कामना आ गई थी कि यह स्वर्ण मुद्रा मुझे किसी भी प्रकार से मिल जाए और इसी कामना

ने, इसी आकाङ्क्षा ने इसके प्रदर्शन का स्तर गिरा दिया। पहली बार लकड़हारे ने जब सहजता के साथ छलाँग लगायी थी तब उसके ऊपर फल प्राप्त करने का कोई भार नहीं था।

अपेक्षा सदा दु:ख का कारण बनती है। अपेक्षाओं से मुक्ति ही आनन्द प्राप्ति का एकमात्र रास्ता है। जब हम अपेक्षा नहीं करते और हमें कुछ मिल जाए तो हमें बहुत खुशी होती है। अपेक्षा रखकर कुछ कार्य किया जाए और उसमें सफलता न मिले, तो अपने भीतर दु:ख और कष्ट होते हैं। इसलिए भगवान अपेक्षाओं से बाहर निकलने के लिए कहते हैं। अपेक्षाओं से बाहर निकल कर कर्म करोगे, तो तुम्हारा कार्य अच्छा होगा।

इसके साथ ही विवेचन सत्र समाप्त हुआ और प्रश्नोतर सत्र का आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता:- मन्जू दीदी

प्रश्न:- भगवान ने अर्जुन को द्वितीय अध्याय में ही सभी बातें विस्तार से समझा दी थीं, तो पुन: अष्टादश अध्यायों में बताने की क्या आवश्यकता थी?

उत्तर:- जब हम इसका पूर्ण विश्लेषण सुनते हैं, तो ज्ञात होता है कि पहले भगवान ने सब ज्ञान सङ्क्षेप में दिया, उसके उपरान्त उसे विस्तार से समझाया। द्वितीय अध्याय में सङ्क्षेप में समझाया, आगे के अध्यायों में उसका विस्तृत रूप बताया। भगवान ने बाद में कर्मयोग हो या ज्ञानयोग या अन्यान्य योग सबको बाद में विस्तार से समझाया। सामान्य साधकों को पूरे विस्तार की आवश्यकता होती है, इसलिये भगवान ने अट्ठारह अध्यायों में सम्पूर्ण वर्णन किया। **ज्ञानेश्वर महाराज** जी ने कहा है कि गीता का एक-एक श्लोक अनुभव में लाओ। गीता रूपी सागर से एक-एक मोती चुन कर निकालने के बाद भी हर बार कुछ नया ही भाव रूपी मोती प्राप्त होता है।

प्रश्नकर्ता:- मनीषा दीदी

प्रश्न:- सनातन भारतीय परम्परा में स्वर्ग-प्राप्ति का विचार कहाँ से उद्भूत हुआ?

उत्तर:- हमारा भारतीय चिन्तन अद्भुत है, अन्य सभी धर्मों के धर्म ग्रन्थों में बाइबिल या क़ुरान में स्वर्ग या नर्क के विषय में ही उल्लेख है। मात्र भारतीय दर्शन का ही चिन्तन ऐसा है जो स्वर्ग के आगे की भी बात करता है। स्वर्ग की बात तो सामान्य लोगों के लिये है, बचपन में हम छोटे बच्चों को समझाने के लिये कहते हैं, कि ज़्यादा चाकलेट न खाना, नहीं तो तुम्हारे दाँत ख़राब हो जानेंगे। चाकलेट से बहुत से अङ्गों पर प्रभाव पड़ता है् किन्तु कम समझ होने के कारण उन्हें दाँत ही बताया जाता है, उसी प्रकार सामान्य बुद्धि के लोगों को स्वर्ग तक जाने की ही बात कही जाती है, इसलिए हम लोगों ने बाल्यकाल में स्वर्ग तक की बात सुनी। किन्तु भारतीय दर्शन मोक्ष की कामना करने वाला दर्शन है, उसका अन्तिम गन्तव्य मोक्ष है। स्वर्ग-नरक, जीवन-मृत्यु से प्राणि मात्र कब मुक्त होगा, यह भारतीय दर्शन का सिद्धान्त है। गीता में कहा गया है कि स्वर्ग में तो मनुष्य एक हवन करके पहुँच जाएँगे, किन्तु पुण्य समाप्त होने पर पुन: जन्म लेना पड़ेगा। हमारा दर्शन मोक्ष की ही बात करता है।

प्रश्नकर्ता:- रामभूषण भैया

प्रश्न:- अध्याय दो में एक श्लोक है-

अशोच्यानन्वशोचस्त्वम्, प्रज्ञावादांश्च भाषसे।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता:।।

इस श्लोक से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी की मृत्यु पर शोक करना उचित नहीं है, क्या आप इससे सहमत हैं?

उत्तर:- यह क्षणिक आवेग है, इसलिये आता है, क्योंकि हम मानव शरीर में हैं। मानव शरीर प्रकृति से प्राप्त है, प्रकृति से तीन गुणों की प्राप्ति भी हम लोगों को हुई है, तो मन में जो हलचल होनी है वह तो होगी किन्तु हम उसके शोक में ही डूबे रहें यह उचित नहीं है। इसलिये उससे शीघ्र बाहर आने का प्रयास होना चाहिए। परिपक्व हो कर जीवन के दु:ख-सुख को भोगकर देहावसान पर तो लोग प्रसन्नता पूर्वक नाचते गाते हुये दाह संस्कार के लिये ले जाते हैं। मृत्यु कपड़े बदलने जितना ही है, यह हम लोगों का शास्त्र है। इसी अध्याय में हम लोगों ने पढ़ा।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,नवानि गृह्णाति नवानि देही।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

यह केवल वस्त्र बदलने जैसा है, आत्मा शरीर बदल कर दूसरे शरीर को धारण करना है, फिर शोक क्यों करें।

प्रश्नकर्ता:- उर्मिला दीदी

प्रश्न:- अध्याय दो- श्लोक संख्या बयालीस—

यामिमां पुष्पितां वाचम् प्रवदन्त्यविपश्चित:।

वेदवादरता: पार्थ नान्यदस्तीति वादिन:।। इसका अर्थ क्या है?

उत्तर:- जैसे मुँह से कोई पुष्प निकल रहे हों, अर्थात आपके मुख से जो पुष्प के समान मीठी-मीठी बातें निकल रही हैं, वे अविवेक की बातें अर्जुन तुम कर रहे हो, ये दिखाने की बातें हैं। इनसे तू बाहर निकल क्योंकि तुम्हें इससे बाहर निकलना है। कृत्रिम बातें जन्म रूपी कर्म फल को देने वाली है। कर्मफल को त्याग कर, तू गुणातीत बन जायेगा। तू स्वर्गसे ऊपर उठकर मोक्ष को प्राप्त करेगा।

प्रश्नकर्ता:- नरेन्द्र भैया

प्रश्न:- रामायण के दृष्टान्तों में है कि जब रामचन्द्रजी भरत से मिले एवम् पिता की मृत्यु की सूचना पा कर वे रोये एवम् दूसरी बार जब लक्ष्मण मूर्च्छित हुये तब भी वे अत्यन्त भाव विह्वल हो गये फिर हम साधारण मनुष्य का विदीर्ण होना क्यों उचित नहीं है?

उत्तर:- इस बात को समझना होगा कि भगवान इस समय मानव देह में है, भगवान इस समय प्रकृति के अधीन हैं इसलिये पुरुष पीछे हो जाता है। किन्तु भगवान तुरन्त सम्भल जाते हैं और भरत को राज्य करने के लिये वापस भेज देते हैं। मानव को भी इन स्थितियों से शीघ्र बाहर निकल कर अपने को सम्भालना होगा, क्योंकि मृत्यु ही सत्य है, आत्मा पुन: नवीन शरीर धारण करती है। उसके लिये शोक निरर्थक है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||